UGC Approved Journal
- Research Link

Since March 2002

An International, Registered & Referred Monthly Journal : History
Research Link - 160, Vol - XVI (5), July - 2017, Page No. 63-65
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

उत्तराखण्ड की काष्ठशिल्प विरासत
(उत्तराखण्ड, हिमाचल एवं नेपाल के विशेष संदर्भ में)

प्रस्तुत शोधपत्र में उत्तराखण्ड की काष्ठशिल्प विरासत का विस्तृत अध्ययन उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश व नेपाल के विशेष संदर्भ में किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हिमाचल और नेपाल में विद्यमान परंपरागत काष्ठशिल्प के अधिकांश घटक प्रायः वहीं हैं, जो मध्य-हिमायल के काष्ठशिल्प के अंतर्गत भी सामान्य रुप से मिलते हैं। साथ ही हिमाचल और नेपाल में भी अलंकरण और उत्कीर्णन के अधिकांश कला-अभिप्राय/प्रतीक इत्यादि मध्यहिमालय में प्रयुक्त अलंकरण अभिप्रायों की भांति ही हैं। इसका प्रधान कारण संभवतः समान धार्मिक विश्वास एवं पारिस्थैतिकी रही हो। जहाँ हिमाचल और नेपाल के कला-अभिप्रायों (प्रतिमाओं, मूर्तियों आदि) में तन्यता, वास्तविकता, आनुपातिकता आदि का बखूबी ध्यान रखा गया है। वहीं, मध्यहिमालय के काष्ठ घटकों में उत्कीर्णित अभिप्रायों में इनका सर्वथा अभाव है।

डॉ.मदन मोहन जोशी

भारत में अन्य शिल्प एवं कलाओं की भांति ही काष्ठ–शिल्प का इतिहास भी अत्यंत प्राचीन है। वैदिक साहित्य में भी काष्ठ–शिल्प से संबंधित पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। इन ग्रन्थों में, जहाँ हमें इस काल में काष्ठकार, रथकार जैसे, शिल्पी वर्ग के अस्तित्व का पता चलता है, वहीं काष्ठ–निर्मित अनेक प्रकार के उपकरण, यथा–विभिन्न प्रकार के आसन (चौकियाँ), बर्तन, रथ, नाव, बैलगाड़ी, यज्ञादि में काम आने वाले उपकरण, लकड़ी के स्तम्भ इत्यादि का उल्लेख भी प्राप्त होता है (ऋग्वेद : 1.116.2; 1.116.3; 3.8; 3.53.19; 9.112.1; 1.161.9; 3.60.2; 10.86.5; यजुर्वेदः 18.21; वृह0 उपनिषदः 4.2.1; मुण्डकोपनिषदः 2.2.6)। काष्ठ शिल्प के महत्व को देखते ही इस काल में रथकार को अग्निहोत्र का अधिकार दिया गया था (तैत्त0 ब्राह्मण 1.1.4)। पाणिनी ने बढ़ई के लिए 'तक्षन्' शब्द का प्रयोग किया है (अष्टाध्यायी : 5.4.95)। रथकार का उल्लेख, बौधायन ने भी किया है (बौधा0 ध0 सू0: 1.9.6)। महाभारत में समुद्री–यात्राओं एवं पोत–भंग होने का उल्लेख आया है (महा0 :3.64.23–28;9.3.5)। अयोध्याकाण्ड में गुहक द्वारा पाँच सौ नावों को लेकर भरत के मार्ग को अवरूद्ध करने के लिए जाने का वर्णन आया है (रामा0: 4.16. 24)।

महात्मा बुद्ध का काल, नगरीय एवं औद्योगिक क्रान्ति का काल था। विभिन्न कलात्मक गतिविधियों के अलावा काष्ठ–शिल्पकारी भी इस युग में पर्याप्त विकसित हो रही थी। बौद्ध–साहित्य, कुम्हारों, बढ़इयों, शिकारियों, चाण्डालों..... आदि के ग्रामों का उल्लेख करते हैं।

मौर्यकालीन काष्ठ–शिल्प के विषय में भी विदेशी यात्रियों एवं समकालीन युग से संबंधित साहित्य द्वारा पर्याप्त जानकारी मिलती है। मेगस्थनीज वर्णन करता है कि, 'यद्यपि चन्द्रगुप्त का प्रासाद अत्यंत विशाल एवं विलासपूर्ण था, फिर भी उसका निर्माण मुलम्मा किए हुए एवं खुदे हुए चित्रों से युक्त काष्ठ से हुआ था' (बाशम, 1972:299)। प्रारंभ के पाषाण निर्मित भवन भी जो अब बचे हैं, स्पष्टतः मौलिक काष्ठ–भवनों के अनुरूप ही बने थे (बाशम, 1972:299)।

गुप्तकाल, कला एवं साहित्य की दृष्टि से व्यापक गतिविधियों का युग कहा जा सकता है। कामसूत्र की 64 कलाओं, शुक्रनीतिसार की 64 कलाओं और ललित विस्तार की 86 कलाओं में से अनेक कलाऐं काष्ठ–शिल्प से संबंधित की जा सकती हैं (त्रिपाठी, 1958: 476–484)। कालिदास, वातायनों (खिड़कियों) में बैठी हुई पुरसुन्दरियों का उल्लेख करता है (रघुवंशमः 6, 24)।

भारत में काष्ठ–शिल्प से संबंधित उपरोक्त विभिन्न क्षेत्रों के भाँति ही, इसी क्रम में मध्यहिमालयी क्षेत्र भी महत्वपूर्ण रखता है। मध्यहिमालय के विभिन्न नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय काष्ठ–शिल्प से संबंधित उदाहरणों को देखा जा सकता है। मध्यहिमालय में काष्ठ–शिल्प के प्रमुख उदाहरण यहाँ विद्यमान स्थानीय शैली में निर्मित परंपरागत आवासीय भवन एवं यहाँ के प्राचीन मंदिर हैं। इनके अलावा कमोबेश काष्ठ–शिल्प के दर्शन फर्नीचर, बर्तन, मापक तथा अन्य घरेलू उपयोग की वस्तुओं, कृषि उपकरणों, धार्मिक वस्तुओं एवं अन्य कलात्मक वस्तुओं में भी होते हैं।

जहाँ तक काष्ठ–उत्कीर्णन में अपनाई गई शैली का प्रश्न है, मध्यहिमालय के प्राचीन काष्ठ–घटकों में जो अलंकरण मिलता है। वह शैली की दृष्टि से कहीं–कहीं 'उकेर कर' (Bas relief) और कहीं–कहीं 'हल्के उभार' (Low relief) द्वारा बनाया गया है। कुछ

सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

स्थानों में अभिप्रायों को अलग से बनाकर बाद में काष्ठ–घटकों में जड़ने (Fix) के उदाहरण भी मिलते हैं। इसी प्रकार अलंकरण में जहाँ मानवीय शरीर को दर्शाया गया है, वहाँ उसमें न तो शारीरिक अनुपात का ध्यान रखा गया है और न ही शारीरिक बनावट एवं गोलाई का। पशु–पक्षियों के आकारों को भी उनके वास्तविक आकार की तुलना में अत्यंत छोटा बनाया गया है। अनेक स्थलों में साथ–साथ प्रदर्शित पशु–पक्षियों में से लघु–पक्षियों को विशालकाय पशुओं के बराबर या उनसे बड़ा भी दिखा दिया गया है। इनमें प्रदर्शित मानव आकृतियाँ तो, 'अत्यधिक स्टाइलाइज्ड' (Highly Stylized) कही जा सकती है, हालांकि इसके कुछ अपवाद मिलते हैं, लेकिन सामान्यतः अधिकांश उदाहरणों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है (जोशी, 2003 : 244–47)।

काश्ठशिल्प का सामाजार्थिक प्रस्थिति से घनिश्ठ संबंध होता है। प्राचीन मध्यहिमालय की सामाजार्थिक स्थिति में, 'खौकिया–गुँसाईं' संबंधों (जजमानी प्रथा) के कारण यहाँ के परंपरागत भवनों, विशेषकर उच्च वर्ग के भवनों में काष्ठ–उत्कीर्णन संभव हो पाया था, इन संबंधों के टूटते ही काष्ठ–उत्कीर्णन की परंपरा भी शनैः–शनैः समाप्त हो गई। मध्य हिमालय के गढ़वाल क्षेत्रों में विशेषकर, चमोली जनपद, देहरादून जनपद एवं उत्तरकाशी जनपद में आवासीय भवनों के अलावा मंदिरों में प्रयुक्त काष्ठ–घटकों को भी अलंकरण का माध्यम बनाया गया है, वस्तुतः गढ़वाल का काष्ठ–उत्कीर्णन, इन मंदिरों में ही अपने भव्यतम रूप में प्रकट हुआ है।

मध्यहिमालय से लगते हिमांचल प्रदेश में भी काष्ठ–शिल्प और उत्कीर्णन की एक सुदीर्घ परंपरा रही है (Ohri:1975; Goetz:1955; Singh: 1983; Charak : 1979)। मध्यहिमालय की भांति ही हिमांचली काष्ठ–कलाकारों ने भी आवासीय भवनों, मंदिरों, राजनिवासों, मठों के अलावा गृहोपयोगी बर्तनों, साज–सज्जा के सामानों एवं कृषि–उपकरणों के निर्माण में अपनी दक्षता एवं कौशल का परिचय दिया है। यहाँ भी भवन निर्माण और कलात्मक उत्कीर्णन के लिए प्रायः देवदार, चीड़, अखरोट, शीशम और तुन की लकड़ी का प्रयोग मिलता है, यद्यपि परंपरागत पहाड़ी काष्ठ–कलाकार ने यहाँ देवदार की लकड़ी को ही अधिक वरीयता दी है, तथापि शीशम और अखरोट भी उनकी प्रिय लकड़ी रही है।

हिमाचल प्रदेश में काष्ठ–शिल्प के प्रतिनिधि स्थलों में –चम्बा, कुलू, मण्डी, शिमला की ऊपरी पहाड़ियाँ, सतलज घाटी क्षेत्र इत्यादि को शामिल किया जा सकता है। इन स्थलों में स्थित मंदिरों, बौद्ध मठों, महलों एवं आवासीय भवनों में विद्यमान विभिन्न घटकों–दरवाजों, खिड़कियों, चौखटों, जंगलों, स्तंभों, धरणियों, काष्ठ–पट्टिकाओं, पिंजर, छजलियों इत्यादि में उच्चकोटि का कलात्मक शिल्प एवं उत्कीर्णन मिलता है (Ohri:1975; Goetz:1955; Singh: 1983; Charak : 1979)। हिमांचल में काष्ठ–उत्कीर्णन के सर्वाधिक प्रचलित अभिप्रायों में से एक प्रमुख अभिप्राय गाँव के मंदिरों में विद्यमान स्थानीय देवी–देवताओं की आकृति का उत्कीर्णन करना है, साथ ही काष्ठ के मुखौटों का अलंकरण भी समान रूप से एक महत्वपूर्ण विषय रहा है, ये मुखौटे धार्मिक अवसरों पर कर्मकाण्डीय नृत्य हेतु प्रयुक्त होते हैं। भवनों के दरवाजों, खिड़कियों, स्तंभों, चौखटों इत्यादि घटकों में, वास्तुशिल्पीय उत्कीर्णन के अलावा देवी–देवताओं की आकृतियों, नृत्यरत बालाओं का अंकन, घुड़सवारों, शिकारी, वन्य पशुओं–शेर, हाथी, बाघ, हिरन इत्यादि तथा हंस, मोर, तोता, कबूतर आदि पक्षियों का चित्रण तथा विभिन्न ज्यामितीय–वानस्पतिक एवं जटिल अभिप्रायों का उत्कीर्णन मिलता है।

हिमाचल प्रदेश में ऐसे अनेक प्राचीन काष्ठ–निर्मित मंदिर हैं, जो पूर्व–मध्यकाल के हैं (Goetz : 1955)। इनमें पुष्पाकृतियाँ, ज्यामितीय आकृतियाँ, मानवाकृतियाँ और देवाकृतियाँ उत्कीर्णन के प्रमुख अभिप्राय रहे हैं। हिमाचल के जिन मंदिरों में क्लासिकीय शैली की काष्ठ–प्रतिमायें मिलती हैं, उनमें ब्रहमौर का लक्षणादेवी मंदिर, लाहौल का मिरकुला देवी या काली मंदिर, छत्रारी का शक्तिदेवी मंदिर, मण्डी में स्थित, छत्री का कानमीनाग मंदिर, जुब्बल में हतकोटी का शिव मंदिर आदि उल्लेखनीय हैं।

नेपाली परंपरागत आवासीय भवनों में भी अन्तर मध्यहिमालयी भवनों की भांति ही मुख्यतः उनके काष्ठ–शिल्प और अलंकरण के आधार पर किया जा सकता है। नेपाली भवनों में विद्यमान काष्ठ–घटकों, विशेषकर उनकी कलात्मक खिड़कियों (द्वार–पटों) और खिड़कियों की चौखट के आधार पर किया जा सकता है (Benerjee, 1980:64, pls. XI&XII)। नेपाली आवासीय भवनों में सामान्यतः खिड़कियाँ जालीदार बनाई जाती हैं, इनके कब्जे (Hinges) लकड़ी के ही बनाये जाते हैं, यद्यपि सुदृढ़ता हेतु अतिरिक्त प्रावधान के रूप में एक अन्य काष्ठ–पट का प्रावधान भी मिलता है, जिसे खिड़की में इस प्रकार बनाया जाता है, कि आवश्यकता पड़ने पर ऊपर–नीचे खिसकाया जा सके। ऐसा ही एक उदाहरण मध्यहिमालय के अस्कोट ग्राम में भी मिलता है। नेपाली परंपरागत आवासीय भवनों में विद्यमान खिड़कियों का सबसे विशिष्ट परंपरागत अलंकरण अभिप्राय, 'मयूर' और 'कमल' रहा है (Benerjee, 1980: pls. XIII & XIV), जिसके कुछ इने–गिने उदाहरण विद्यमान हैं और ये भी संरक्षण के अभाव में लुप्त होने के कगार पर हैं।

खिड़कियों के अतिरिक्त नेपाली भवनों में विद्यमान विभिन्न काष्ठ–घटकों यथा– दरवाजों, चौखटों, स्तंभों, क्षितिजाकार स्तंभों, पट्टिकाओं, धरणियों, तुणालों (Brackets) इत्यादि में भी उच्चकोटि का काष्ठ–उत्कीर्णन मिलता है (Benerjee, 1980:63-65;231-240)। छत के प्रक्षेपित भाग को सहारा देने के लिए निर्मित स्तंभ, जिन्हें 'तुणाल' कहा जाता है, इस दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भवन के कोने वाले भागों में निर्मित 'तुणालों' के ऊपरी भाग को सामान्यतः ऐसे दहाड़ते हुए सिंह की आकृति में बनाया जाता है जो अपने शरीर को पूरी तरह फैलाकर इस प्रकार खड़ा हो मानो शक्ति, कल्याण और सम्पन्नता को प्रदर्शित कर रहा हो, यह धर्म का प्रतीक भी माना जाता है (Benerjee, 1980:65)।

नेपाल में काष्ठ–उत्कीर्णन के श्रेष्ठ घटकों में से एक घटक भवन के प्रवेश–द्वार एवं उनके शीर्ष भाग में निर्मित अर्द्धवृत्ताकार अथवा त्रिभुज की आकृति में बने 'तोरण' हैं। इस संबंध में पाटन में स्थित भीमसेन मंदिर के प्रवेश–द्वार (Benerjee, 1980 : 232-33) का उदाहरण दिया जा सकता है। तोरण के दोनों निचले किनारों में मकर का शीर्ष प्रदर्शित किया गया है जो पाँच आधारभूत तत्वों का प्रतिनिधित्व करता है (Benerjee, 1980 : 233)। नेपाल में काष्ठ–शिल्प एवं उत्कीर्णन के उत्कृष्ट उदाहरणों के दर्शन, काठमाण्डू, भक्तपुर, देवपाटन एवं पाटन में स्थित में अनेक प्राचीन मंदिरों जिनमें तलेजु भवानी मंदिर (भक्तपुर), भवानी मंदिर, मूलचौक (पाटन), भुवनेश्वरी

मंदिर (देवपाटन), छूश्या बिहार (काठमाण्डू), रूद्रवर्णमहाबिहार (पाटन), कृष्ण मंदिर (पाटन), पुजारी मठ (भक्तपुर) एवं अनेकानेक परंपरागत आवासीय भवनों में किए जा सकते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिमाचल प्रदेश और नेपाल में विद्यमान परंपरागत काष्ठ–शिल्प के अधिकांश घटक प्रायः वही हैं, जो मध्य–हिमालय के काष्ठ–शिल्प के अंतर्गत भी सामान्य रूप से मिलते हैं। साथ ही हिमांचल और नेपाल में भी अलंकरण और उत्कीर्णन के अधिकांश कला–अभिप्राय / प्रतीक इत्यादि मध्यहिमालय में प्रयुक्त अलंकरण अभिप्रायों की भांति ही हैं। इसका प्रधान कारण संभवतः समान धार्मिक विश्वास एवं पारिस्थैतिकी रही हो। जहाँ हिमाचल और नेपाल के कला–अभिप्रायों (प्रतिमाओं, मूर्तियों इत्यादि) में तन्यता (Plasticity), वास्तविकता (Naturalism), आनुपातिकता (Proportionality) आदि का बखूबी ध्यान रखा गया दिखाई देता है, वहीं मध्यहिमालय के काष्ठ–घटकों में उत्कीर्णित अभिप्रायों में इनका सर्वथा अभाव है।

संदर्भ :

(1) *Benerjee, N.R. (1980) : Nepalese Architecture, Agam Kala Prakashan, Delhi.*

(2) *Bernier, Roland. M. (1978) : The Temples of Nepal, An Introductory Study, Second revised edition, S. Chand & Company Ltd. New Delhi.*

(3) *Charak, S. S. (1979) : History and culture of Himalayan States, Vol.3, pp. 279-300, Light and Life Publishers, Rohtak (Haryana).*

(4) *Goetz, H. (1955) : The Early Wooden Temples of Chamba, E.J. Brill & Co. Leiden.*

(5) *Joshi, M.P. (1976) : The Katarmal temples of Kumaon, Vishueshwaranand Indological Journal XVI (i) : 99-106.*

(6) *Ohri, V.C. (ed.), (1975) : Art of Himachal, Simla.*

(7) *Singh, Mian G. (1983) : Arts an Architecture of Himachal Pradesh, B.R. Publishing Corporation, Delhi.*

(8) *अग्रवाल, वासुदेवशरण (1955) : पाणिनी कालीन भारतवर्ष', चौखम्भा भवन, वाराणसी ।*

(9) *कठोच, यशवन्त सिंह (1981) : मध्यहिमालय का पुरातत्त्व' लखनऊ, रोहिताश्व प्रिंट्स।*

(10) *जोशी, एम0 पी0 (1994) : उत्तरांचल के देवालयों का वास्तु–शिल्प', उत्तरांचल हिमालय 'ऋषि', सम्पा0 जोशी, एम0पी0 एवं कु0 ललितप्रभा जोशी, प्रका0 श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, अल्मोड़ा, पृ0:32–52 एवं चित्र।*

(11) *जोशी एम0 पी0, (1998) : प्रागैतिहासिक मध्यहिमालय', 'मानव', ऐथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसाइटी, लखनऊ, वर्ष 26, अंक 1–2, जनवरी–जून, 1998, पृ0–69–92.*

(12) *जोशी, मदन मोहन (1994) : कुमाउंनी आवासीय वास्तुशिल्प' उत्तरांचल हिमालय, 'ऋषि', सम्पा0 जोशी, एम0पी0 एवं कु0 ललितप्रभा जोशी, प्रका0 श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, अल्मोड़ा, पृ0–232–244.*

(13) *जोशी, मदन मोहन (2003) : अल्मोड़ा जनपद का पुरातत्त्व', अप्रकाशित पीएच0 डी0 शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।*

(14) *जोशी, मदन मोहन (2003) : कुमाऊँ में काष्ठ–उत्कीर्णन', प्रकृत लोक, अप्रैल–जून–2003, सम्पा0 विमल सती, रानीखेत, पृ0–40–42.*

(15) *जोशी, मदन मोहन (2004) : मध्य हिमालय का काष्ठशिल्प, वरिष्ठ अध्येतावृत्ति शोध प्रबंध, पर्यटन एवं संस्कृति विभाग, भारत सरकार।*

(16) *प्रसाद, ईश्वरी एवं शर्मा, शैलेन्द्र (1984) : प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनू पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।*

(17) *बाशम, ए0 एल0 (1972) : अद्भुत भारत, अनु0 बैंकटेस चन्द्र पाण्डे, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।*

(18) *त्रिपाठी, राम प्रताप (1958) : सम्मलेन पत्रिका : कला अंक, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।*

(19) *तिवारी, राकेश, (1984) : सर्वेक्षण रिर्पोट, 1981–82–83 (गढ़वाल–कुमाऊँ मण्डल), उ0 प्र0 राज्य पुरातत्त्व संगठन, लखनऊ।*

❁❁

UGC Approved Journal
- Research Link

Since March 2002

An International, Registered & Referred Monthly Journal : History
Research Link - 160, Vol - XVI (5), July - 2017, Page No. 66-67
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

जवाहरलाल नेहरुजी का भारतीय चिन्तन परम्परा में ऐतिहासिक दृष्टिकोण

प्रस्तुत शोधपत्र में जवाहरलाल नेहरुजी का भारतीय चिन्तन परंपरा में ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर विचार किया गया है। नेहरुजी का यह कहना था कि, आधुनिक विज्ञान और तकनीक के आधार पर ही भारत प्रगति कर सकता है। किन्तु, इसके साथ ही वे इस बात पर भी जोर देते थे कि नैतिक और आध्यात्मिक विकास के बिना वैज्ञानिक और भौतिक क्षेत्र में तमाम प्रगति निरर्थक सिद्ध हो सकती है। नेहरुजी की शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और गुट निरपेक्षता की नीति, भारी उद्योगों और सार्वजनिक क्षेत्र पर बल देने वाली आर्थिक विकास की नीति का उद्देश्य जनता के वास्तविक हितों की पूर्ति करना है। विचारात्मक दृष्टि से नेहरुजी के सिद्धांत और व्यवहार में जो भी कमजोरियाँ रही हों, उन्होंने नई पीढ़ी के मस्तिष्क को एक प्रगतिशील, वैज्ञानिक दिशा प्रदान की थी।

डॉ.प्रकाशचन्द्र बड़वाया

एक विश्व सम्प्रदाय और विश्वशांति नेहरू का सपना था।[1] वे जानते थे कि परमाणु हथियारों के इस दौर में अगर युद्ध होता है, तो सभ्यता के सभी मूल्य नष्ट हो जाएंगे। इसीलिए उनका मानना था कि आज अगर दुनिया भर के राजनेताओं को कुछ करना है, तो यही कि वे जगह–जगह फैले तनाव और संघर्ष को कम करते हुए आपसी सद्भावना और समझ से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों और समस्याओं को दूर करने की कोशिश करे।[2] नेहरू परस्पर विश्वास, शांति, सहयोग और भाईचारे की भावना से समस्याओं का समाधान निकालने में विश्वास रखते थे। इसीलिए उन्हें शांतिदूत कहा जाता है।[3] जब से देश के शासन की बागडोर उनके हाथ में आयी थी, संसार में सर्वत्र भारत का सम्मान, मर्यादा और प्रतिष्ठा बढ़ी थी। नेहरू जी जन्मजात विद्रोही थे। शेषण, उत्पीडन, अत्याचार ओर अन्याय के विरूद्ध उन्होंने हमेशा आवाज उठायी थी। वह स्पष्टवादी, निर्भीक और न्याययुक्त बात के समर्थक राजनीतिज्ञ थे। उनके इशारे पर करोडों जनसाधारण चलते थे, लेकिन फिर भी वह तानाशाह नही थे। ''खुद जिंदा रहो और दूसरों को भी जिंदा रहने दो'' की नीति पर विश्वास रखते थे।[4]

विश्लेषणात्मक विधि :

प्रस्तुत शोधपत्र में नेहरूजी के विचारों से सम्बन्धित नवीनतम् अनुसंधानों और नूतन विचारों को गृहित करते हुए अपने स्वतंत्र विचार को व्यक्त किया गया है। साथ ही इसमें नेहरू जी के विचारों का विश्लेषणात्मक विधि से अध्ययन किया गया है। यहाँ नेहरू जी से संम्बधित साहित्य का विश्लेषण करके आज के संदर्भ में उनकी प्रांसगिकता और उपयोगिता खोजने की कोशिश की गई है।

राष्ट्रीय स्वतंत्राता संग्राम के एक क्रांतिकारी नेता के रूप में नेहरूजी ने जो महान प्रतिष्ठा अर्जित की, उसके फलस्वरूप समाजवाद के प्रति नेहरू के दृष्टिकोण का जनता के बहुत बड़े हिस्सों के सोचने समझने के तरीकों पर प्रभाव पड़ा। जवाहरलाल नेहरू जी की प्रतिभा के अनेक पक्ष अब इतिहास का अंक बन चुके है, किन्तु हम इस महान मुक्तिदाता के आदर्शों और नीतियों को तब तक नहीं समझ पाएंगे, जब तक हम उस दर्शन को न समझ ले, जो इन आदर्शों और नीतियों में समाया हुआ था और य न जान ले कि किस प्रकार इसने उनके विचारों के निर्माण में सहायता की।[5]

चिन्तन की दृष्टि से नेहरूजी का दृष्टिकोण ऐशो–आराम के जीवन की उपज नहीं था, जो चारों ओर व्याप्त आन्दोलन और उथल–पुथल से अलग हो। इस दृष्टिकोण का जन्म टकरावों और संघर्षों के बीच हुआ था। नेहरू जी का दर्शन मौजूदा परिस्थिति को बदलने तथा शोषण और उत्पीड़न, भूख, रोग तथा अज्ञान से मुक्त एक नई समाज व्यवस्था का निर्माण करने की एक पद्धति और सचेतन पथ–निर्देशक है। प्रथम महायुद्ध और उसके दुष्परिणाम, तिलक और एनी बेसेंट के होमरूल आन्दोलन, जलियांवाला बाग हत्याकांड तथा उसका व्यापक विरोध–इन सबका जवाहरलाल नेहरू के संवेदनशील मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा।

नेहरू जी ने अपना राजनीतिक जीवन तिलक और गाँधी के शिष्य के रूप में आरंभ किया। महात्मा गांधी के आह्वान पर जवाहर लाल नेहरू आन्दोलन में कूदे और 1921 में विदेशी सरकार के शासन में उनको कारावास का पहला अनुभव हुआ। असहयोग आन्दोलन के वापस ले लिए जाने पर वह किसान समुदाय के घनिष्ठ सम्पर्क में आये, किसानों की निर्धनता, दरिद्रता और कंगाली को देखकर यह विचलित हो उठे। अब उन्हें विश्वास हो गया कि यदि भूख, अज्ञान और गरीबी को मिटाया नहीं जाता, तो राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है।

जवाहरलाल नेहरू ने एक नयी शक्ति और स्पष्ट दृष्टिकोण के साथ स्वतंत्रता प्राप्ति और साम्राज्यवाद विरोधी कार्यवाइयों में जुट गए। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को नया रूप और नई अन्तर्वस्तु प्रदान की। कांग्रेस के लाहौर में हुए अधिवेशन में जिसमें पूर्ण स्वतंत्रता को भारत का अंतिम लक्ष्य घोषित किया था, अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा ''मैं यहाँ साफ–साफ कह देना चाहता हूँ कि मैं

एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास विभाग), पी.जी.गव्हर्नमेंट कॉलेज फॉर गर्ल्स, सेक्टर 11, चण्डीगढ़

समाजवादी और प्रजातंत्रावादी हूँ और मैं राजाओं और महाराजाओं अथवा ऐसी व्यवस्था में जो उद्योग धंधे के आधुनिक राजा–महाराजाओं को पैदा करती है, विश्वास नहीं करता।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन के कारण नेहरूजी को जेल जाना पड़ा था, किन्तु जेल की यातनाओं और पीड़ाओं से नेहरू का मनोबल और भी फौलादी बना। जेल में उन्होंने ''विश्व इतिहास की झलक'' लिखते हुए अपने दिन गुजारे। भारत के अतीत में उन्होंने गहरे गोते लगाये–इतिहास के एक छात्र के रूप में नहीं, वरन् स्वतंत्रता तथा एक नयी समाज व्यवस्था के लिए संघर्ष में सक्रियता से जूझनेवाले योद्धा के रूप में। वह राष्ट्रीय आन्दोलन के समझ एक ऐतिहासिक संदर्भ प्रस्तुत करना चाहते थे तथा उन नियमों को खोज निकालना चाहते थे, जो सामाजिक विकास तथा समसामयिक समाज के तेजी से बदलते हुए लोकाचार को नियंत्रित करते थे।

जवाहरलाल नेहरू जब जेल से निकले तो एक महान राष्ट्रीय नेता के रूप में जनता ने उनका स्वागत किया और वह फिर संघर्ष में कूद पड़े। 1936 में कांग्रेस के लखनऊ में हुए अधिवेशन में उन्होंने कहा–भारत की जनता की कंगाली, बेरोजगारी, दयनीयता और गुलामी को दूर करने का मै समाजवाद के अलावा दूसरा रास्ता नहीं देख पाता हूँ। इसका मतलब है कि हमे अपने राजनीतिक और सामाजिक ढांचे में बहुत बड़े और क्रांतिकारी परिवर्तन करने होगें, जमीनों और उद्योग–धंधें पर शिकंजा जमाये बैठे निहित स्वार्थों को और साथ ही सामन्ती तथा निरकुंशतावादी भारतीय रजवाड़ों की व्यवस्था को भी खत्म करना होगा।[6] समाजवाद न केवल भारत से कंगाली, बेरोजगारी, निरक्षरता, बीमारी और गंदगी मिटाने के लिए जरूरी था, वरन् मानव व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए भी जरूरी था।[7]

यह एक ऐसा समय था, जब ब्रिटिश साम्राज्यवादी तथा राजनीतिक प्रतिक्रियावादी, देश में हर प्रकार की सामुदायिकता और पृथकतावाद को प्रोत्साहित कर रहे थे। एक ओर रूढ़िवादी हिन्दू धर्म के समर्थक ''हिन्दी, हिन्दू हिन्दुस्तान'' का नारा लेकर ''राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दू धर्म का सैन्यीकरण करने का प्रयत्न कर रहे थे। वी॰ डी॰ सावरकर का दावा था कि केवल हिन्दू ही भारतीय राष्ट्र के संघटक हैं[8], दूसरी ओर मुस्लिम लीग के नेता हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों में किसी प्रकार का तालमेल न हो सकने की दुहाई देते थे।[9] नेहरू ने इन धरणाओं का पूरी शक्ति से विरोध किया और बताया कि संस्कृति और राष्ट्र की धर्मिक व्याख्याकार न केवल अवैज्ञानिक है, वरन् हानिकारक भी है।[10] नेहरू ने स्वीकार किया कि भारत में नस्ली और सांस्कृतिक भिन्नताएँ हैं, किन्तु इन भिन्नताओं का धर्मिक विभाजनों से कोई संबंध नहीं है।[11] भारत में हिन्दू और मुसलमानों के बीच कटुता के कारण मुस्लिम राष्ट्रवाद मजबूत हुआ, क्योंकि मुसलमान अपने समुदाय की ओर ज्यादा तथा मुल्क की ओर कम देखने लगे। उनके साम्प्रदायिक स्तर पर ही उन्हें पराजित करने के लिए हिन्दू साम्प्रदायिक संगठन मैदान में आये किन्तु ये उतने ही संकीर्णतावादी और तंगदिल थे, जितने कि दूसरे।[12]

जवाहरलाल नेहरू का मानना था कि हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों और सिक्खों सभी के सैद्धान्तिक एकरूपीकरण से ही सच्ची राष्ट्रीयता की वृद्धि को सकती है। इसका अर्थ यह था कि एक समान राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास होगा तथा साम्प्रदायिक दरार मिट जाएगी।[13] उन्होंने एक जगह कहा है कि हिन्दुस्तान की एकता मेरे लिए अब एक कल्पित बात न रह गई। यह एक आंतरिक अनुभव था और मैं इसके बस में आ गया।[14]

नेहरू का उपागम (Approach) मूलतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभावित था। वह भावात्मक और धर्मिक अनुभवों के सम्बन्ध में भी वैज्ञानिक विधियों की सम्भावना में विश्वास करते थे। उन्होंने बड़ी ही तीखी भाषा में अन्ध विश्वासों, अंधनुयायिता तथा रूढ़िवादी विचारों की निंदा की और निरर्थक कर्मकाण्डों की आलोचना की।[15]

जवाहरलाल नेहरू ने यह समझ लिया था कि आधुनिक विज्ञान और तकनीक के आधार पर ही भारत प्रगति कर सकता है। किन्तु, इसके साथ ही वह इस बात पर जोर देते थे कि नैतिक और आध्यात्मिक विकास के बिना वैज्ञानिक और भौतिक क्षेत्र में तमाम प्रगति निर्थक सिद्ध हो सकती है। नेहरू जी की शांतिपूर्ण सहअस्तित्व और गुट निरपेक्षता की नीति, भारी उद्योगों और सार्वजनिक क्षेत्र पर बल देने वाली आर्थिक विकास की नीति, का उददेश्य जनता के वास्तविक हितों की पूर्ति करना है।[16]

अपनी मृत्यु से दो महीने पहले नौ मार्च 1964 को उन्होंने कहा था– ''भारत से सत्ता की बागडोर किसी के भी हाथें में क्यों न हो, गुटनिरपेक्षता और शांति पूर्ण सह–अस्तित्व की हमारी नीति, समाजवाद की ओर बढने के लिए नियोजन तथा सुव्यवस्थित विकास की हमारी नीति, कायम रहेगी। कारण यह है कि हमारे देश की जनता के विशाल बहुमत की इच्छा को ये ही नीतियाँ प्रतिबिम्बित करती है।[17]

विचारात्मक दृष्टि से जवाहरलाल नेहरू के सिद्धान्त और व्यवहार में जो भी कमजोरियाँ रही हों, उन्होंने नई पीढ़ी के मस्तिष्क को एक प्रगतिशील, वैज्ञानिक दिशा प्रदान की। उनकी दूरदर्शिता और साहस ने साथ ही उनके ऊँचे आदर्शों ने कोटि–कोटि जनों को स्वतंत्रता, जनतंत्र और समाजवाद की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया।

संदर्भ :

(1) ठाकुर, देवेश और जिन्दल, यती (1998) : आजादी की आधी सदी और आम आदमी (भाग–1), नई दिल्ली, पृ॰ 125. ***(2)*** *प्रसाद, शकदेव : नेहरू और विज्ञान, पृष्ठ 18.* ***(3)*** *पाण्डव, बी॰ एन॰ : नेहरू, पृष्ठ 348.* ***(4)*** *गुप्ता, डॉ॰ एस॰ पी॰ (2006) : राष्ट्र के महान व्यक्तित्व, एस॰ पी॰ पब्लिकेशन, चण्डीगढ़, पृष्ठ 44.* ***(5)*** *के॰ दामोदरन : भारतीय चिंतन परमपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृ॰ 484.* ***(6)*** *नेहरू, जवाहरलाल : इण्डिया एण्ड दि वर्ल्ड, पृ॰ 82–83.* ***(7)*** *नेहरू, जवाहरलाल : ए वेन्च ऑफ लेटर्स, पृ॰ 353.* ***(8)*** *गोलवलकर, एम. एस. : वी और दि नेशनहुड डिफाइन्ड, पृ॰ 55.* ***(9)*** *थियोडोर दे बेटी तथा अन्य : सोर्सेज ऑफ इंडियन ट्रेडिशन, पृ॰ 836.* ***(10)*** *नेहरू, जवाहरलाल : ऑटोबायग्राफी, पृ॰ 361.* ***(11)*** *नेहरू, जवाहरलाल : रीसेन्ट एसेज एण्ड राइटिंग्स।* ***(12)*** *नेहरू, जवाहरलाल : गिल्म्पसेज ऑफ वर्ड हिस्ट्री।* ***(13)*** *नेहरू, जवाहरलाल : रीसेन्ट एसेज एण्ड राइटिंग्स।* ***(14)*** *नेहरू, जवाहरलाल : हिन्दुस्तान की कहानी 1957, पृ॰ 21.* ***(15)*** *नेहरू, जवाहरलाल : दि डिस्कवरी ऑफ इंडिया, पृ॰ 10.* ***(16)*** *के॰ दामोदरन : भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली, पृष्ठ 500.* ***(17)*** *के॰ दामोदरन : भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली, पृष्ठ 500.*

❁❁